

समकालीन समाज में मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता

(Relevance of Human Values in Contemporary Society)

डॉ० उत्तम सिंह*

आज सम्पूर्ण विश्व सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों के संकट के दौर से गुजर रहा है। हम मानवीय, वैश्विक चेतना, प्रेम, मैत्री और करुणा की बातें करेंगे, अपने को राम-कृष्ण, महावीर, बुद्ध, सुकरात, ईसामसीह, मुहम्मद साहब, स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गांधी की परम्परा को बताने में कोई कंजूसी नहीं करते हैं। लेकिन अपने वैयक्तिक जीवन में अधिकांश लोग निकृष्ट, अमानवीय, अनैतिक, असामाजिक आचरण करने में भी संकोच नहीं करते और एक सीमा का अतिरेक तो तब होता है, जब इसे ही लोग अपना जीवन दर्शन बना लेते हैं। सामाजिक मूल्य और वैयक्तिक आचरण के बीच का द्वैत ही आज धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मूल्यों में आये विचलन का मुख्य कारण है। मूल्य शिक्षा की सामयिक प्रासंगिकता पर विचार करने से पूर्व मूल्य शिक्षा के विकास क्रम पर विचार कर लेना आवश्यक है।

मूल्य शिक्षा के विकास का इतिहास का जब हम सिंहावलोकन करते हैं, तो पाते हैं कि मानवीय चेतना के साथ-साथ मूल्य शिक्षा का भी विकास होता रहा है। जब हम आदिम युग में थे तब मानव व्यक्तिगत शारीरिक मूल्य को अधिक महत्व देता था और उन्हीं वस्तुओं को अधिक चाहता था, जो उसे वैयक्तिक शारीरिक सुख प्रदान करती थी, उसकी इच्छाओं की पूर्ति करती थी। जैसे-जैसे मनुष्य का मानसिक-सामाजिक विकास होता गया, वैसे-वैसे उसके मूल्यों के स्वरूप में भी विकास होता गया। आदिम युग का जो मनुष्य केवल अपने दैनिक भोजन के लिए प्रयास करता था, वह अब धन सम्पत्ति भी इकट्ठा करने लगा और भोजन के अलावा मनोरंजनात्मक मूल्य को भी महत्व प्रदान करने लगा। इसी के साथ-साथ उसमें सामाजिकता का भी विकास होने लगा। वह मित्रता आदि साहचर्य मूल्य और सच्चाई, ईमानदारी आदि चारित्रिक मूल्यों को भी महत्व प्रदान करने लगा। इस सामाजिक मूल्यों के विकास के साथ-साथ वह कला, सौन्दर्य, चित्रकारी, बौद्धिक ज्ञान और ईश्वर आत्मा आदि आध्यात्मिक मूल्यों से भी प्रेरित होने लगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो आदिम मनुष्य पहले अपनी पाशविक मनोवृत्तियों की संतुष्टि तक सीमित रहता था, वह अब अपने विकास के साथ आगे बढ़ने पर आत्म सिद्धि से लेकर 'बहुजन सुखाय' बहुजन हिताय जीने लगा।

मूल्यों के इसी वैकासिक क्रम को ध्यान में रखकर अर्बन महोदय ने मूल्यों का दो प्रकार विभाजन किया है- जैविक मूल्य और अति जैविक मूल्य। जैविक मूल्य के अन्तर्गत शारीरिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, मनोरंजन मूल्य और अतिजैविक मूल्य के अन्तर्गत सामाजिक मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य निहित हैं। सामाजिक मूल्य का विभाजन साहचर्य मूल्य और चारित्रिक मूल्य के रूप में तथा आध्यात्मिक मूल्य का विभाजन सौन्दर्यबोधक मूल्य और बौद्धिक मूल्य, धार्मिक मूल्य के रूप में किया है। जैविक मूल्य हमारे जीवन रक्षा के लिए अति आवश्यक हैं, फिर भी अति जैविक मूल्यों को जैविक मूल्यों से श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि अति जैविक मूल्य ही हमारे मनुष्य होने की शर्त है। इन्हीं सभी मूल्यों से प्रेरणा लेकर विश्व की अनेक सभ्यता और संस्कृतियों का विकास हुआ है। मानव ने पेट पूजा से लेकर आत्म पूजा तक की अपनी चैतसिक विकास यात्रा इन्हीं मूल्यों की छत्रछाया में पूरी की है। इन्हीं मूल्यों से प्रेरित होकर कोई राम बना तो कोई रावण, कोई कृष्ण बना तो कोई कंस। इन्हीं मूल्यों से प्रेरित होकर वर्धमान और सिद्धार्थ में क्रमशः अर्हत्व और बुद्धत्व को प्राप्त किया, डाकू रत्नाकार वाल्मीकि और नृशंस हत्यारा अंगुलिमाल भिक्षु बना।

मूल्यों को और कई दृष्टियों से विभाजित किया गया है जैसे-भावात्मक मूल्य और अभावात्मक मूल्य, साधक मूल्य और तात्त्विक मूल्य, तात्कालिक मूल्य और शाश्वत मूल्य तथा उत्पादक मूल्य और अनुत्पादक मूल्य। इन विभिन्न दृष्टियों से मूल्य का विभाजन यह स्पष्ट करता है कि मूल्य के स्वरूप के अनेक आयाम हैं जो मानव जीवन को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित करते हैं। आदिम काल से लेकर चांद सितारों पर पहुँचने वाले मानव के विकास की बात हो या शारीरिक संतुष्टि से लेकर 'अहं ब्रह्मस्मि' की उद्घोषणा करने वाले मानव के विकास की बात हो, सबके सब मूल्य शिक्षा के आलोक में विकसित हुए हैं। व्यक्ति और समाज की विकास यात्रा में मूल्य, शिक्षा से प्रेरित होने का एक विकासात्मक क्रम रहा है। आदिम युग का मानव पशुओं की भांति भोजन और काम के निरा शारीरिक मूल्यों से प्रेरित होने का एक वैकासिक क्रम रहा है। आदिम युग का मानव पशुओं की भांति भोजन और काम के निरा शारीरिक मूल्यों से प्रेरित होता था। वह मूलभूत प्रवृत्तियों से संचालित होता और वैयक्तिक सुख प्राप्त करना उसका उद्देश्य होता था। लेकिन जैसे-जैसे उसमें सामाजिक चेतना का विकास होने लगा, वैसे-वैसे वह सामाजिक मूल्यों से प्रेरित होने लगा और पहले अपने जीवनसाथी के प्रति, उसके बाद परिवार के प्रति और समाज के प्रति अपने सामाजिक मूल्यों का निर्वाह करने लगा। अब वह अपनी सुख सुविधा के साथ दूसरों की सुख सुविधा का भी ध्यान रखने लगा। पहले उसकी जिन्दगी प्रतिदिन सुबह होने के साथ प्रारम्भ होती थी और रात में सोने पर समाप्त होती थी और पुनः सुबह उठकर एक नई जिन्दगी की शुरुवात करता था। भोजन की खोज में वह सदैव घूमता रहता, लेकिन जब से वह परिवार के साथ एक स्थान पर स्थाई तौर पर रहने लगा, तो उसे रोटी, कपड़ा और मकान की बेहतर व्यवस्था के लिए अर्थ संचय करने की ओर प्रेरित

होना पड़ा और आर्थिक मूल्य उसकी जीवन यात्रा को गति प्रदान करने लगे। मानव अपने जैविक विकास की इसी कड़ी में मानसिक संतुष्टि हेतु मनोरंजन के अनेकानेक साधनों की ओर आकर्षित होने लगा।

जैविक मूल्य ही मानव विकास यात्रा के अंतिम पड़ाव नहीं थे, वह अति जैविक मूल्यों को अपना प्रेरणा श्रोत बनाने लगा। जहाँ पर जैविक मूल्यों में वह 'स्व' के घेरे का अतिक्रमण नहीं कर पाता था, वहीं पर वह अति जैविक मूल्यों में अपने और अपने परिवार से इतर दूसरों के विषय में भी कार्य करने लगा। वह अपने हित के लिए भी कार्य करता, लेकिन ऐसा कोई भी कार्य नहीं करता, जिससे दूसरों का अहित हो और उसका हित हो। अब मानव वैयक्तिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास का भी ख्याल रखता है और अधिक सामाजिक रूप में विकसित होने पर, कुछ लोग सामाजिक हित को अधिक वरीयता देते थे। इस प्रकार सामाजिक मूल्यों के साहचर्य मूल्य और चारित्रिक मूल्य पर अधिक बल दिया जाने लगा। अधिक से अधिक लोगों से सम्बन्ध बनाना और उस सम्बन्ध बनाने में अपनी चारित्रिक शुद्धता को बनाये रखना सामाजिक मूल्यों की श्रेष्ठता का द्योतक था। इन्हीं सामाजिक मूल्यों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञानों का मनुष्य द्वारा सृजन किया गया। जैसे—साहित्य, कला, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र आदि। इन शास्त्रों के माध्यम से मानव समाज के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक मूल्यों का अध्ययन करता है और मानव समाज के आपसी साहचर्य और चारित्रिक गुणों के विकास पर बल देता है। सामाजिक मूल्यों के बाद मानव समाज जब आध्यात्मिक मूल्यों की तरफ विकास यात्रा करता है, तो वह भौतिक समृद्धि से ऊपर उठकर आत्मिक उन्नति को अपना लक्ष्य बना लेता है।

सम्पूर्ण मानव समाज के इस ऐतिहासिक विकास के साथ प्रत्येक व्यक्ति में भी मूल्य के विकास का एक क्रम है। बाल्यकाल में बच्चों में खिलौनों, पतंगों और मिट्टी के घरौंदों में अतिशय आसक्ति रहती है। यदि किसी ने उनके खिलौनों को तोड़ दिया और उनके घरौंदों को बिगाड़ दिया तो वह उसके लिए मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं, कटी पतंग को पकड़ने के लिए छत से कूद जाते हैं। लेकिन जैसे ही वह बड़ा हो जाता है, खिलौनों के प्रति उसकी आसक्ति कम हो जाती है। युवा होने पर अपने विपरीत लिंग के साथी के प्रति और अन्य सांसारिक वस्तुओं के प्रति, पद और प्रतिष्ठा के प्रति आसक्ति बढ़ती जाती है और उसे पाने के लिए अनेकानेक प्रयास भी किये जाते हैं। जागतिक वस्तुओं के प्रति यही लोगों का व्यावहारिक मूल्यपरक सहसम्बन्ध ही संसार है। लेकिन विवेक सम्पन्न होने के कारण वैयक्तिकता से प्रारम्भ व्यक्ति की चैतसिक यात्रा सामाजिकता पर टहरती नहीं है, अपितु सामाजिकता के धरातल से आत्मिक उन्नति के लिए आध्यात्मिक मूल्यों से प्रेरित होकर एक छलांग लगाती है। इनसे बदलता कुछ नहीं, हम भी वही रहते हैं और दुनिया भी वही रहती है, बदलता है तो बस हमारा दृष्टिकोण, समाप्त होती है सांसारिक वस्तुओं के प्रति हमारी आसक्ति। इसी से गीता में वास्तविक संन्यास को कर्म का त्याग न कहके कर्म फल के प्रति आसक्ति का त्याग कहा

गया है। आचार्य शंकर की अद्वैती भाषा में समझे तो यह वस्तु का प्रातिभासिक और व्यावहारिक ज्ञान के बाद आध्यात्मिक ज्ञान है। आध्यात्मिक ज्ञान मूल्य शिक्षा की पराकाष्ठा है। आध्यात्मिक मूल्य की प्राप्ति ही मानव जीवन का लक्ष्य है। भारतीय परम्परा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थों में मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है और मोक्ष, ज्ञान की वह स्थिति है, जिसमें ज्ञान यथार्थ होता है, अयथार्थ ज्ञान की कोई गुन्जाइस ही नहीं होती है, आसक्ति और अज्ञान का समूल विनाश होता है और व्यक्ति को अपने यथार्थ स्वरूप का बोध हो जाता है। तत्त्वज्ञान, बुद्धत्व, अर्हत्व, स्थितिप्रज्ञता आदि इसी मोक्ष ज्ञान के रूप है। मोक्ष ज्ञान प्राप्त करने के बाद महावीर, बुद्ध, ईसामसीह, मुहम्मद साहब, कबीर, नानक, रैदास आदि निष्क्रिय न होकर पहले से अधिक सक्रिय हुए, जगत व्यवहार भी निभाते रहे और जल में रहकर कमल पत्र की भांति जल से अलिप्त भी रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक मोड़ पर मूल्य शिक्षा से प्रभावित होता है।

मूल्यपरक शिक्षा, तात्कालिक और शाश्वत दो तरह की होती है। तात्कालिक मूल्य देश—काल और परिस्थिति सापेक्ष होता है, जबकि शाश्वत मूल्य देश—काल और परिस्थिति निरपेक्ष। जैसे इस्लाम धर्म के प्रारम्भ में कई पत्नियां रखना और उनसे अधिक से अधिक बच्चे पैदा करना इस्लाम धर्म का तात्कालिक मूल्य था, क्योंकि उस समय अधिक युद्ध होते थे। उसमें मारे गये सैनिकों की पत्नियों को व्यभिचार से बचाने के लिए अधिक पत्नियों को रखना और युद्ध के लिए अधिक से अधिक सैनिक तैयार करने के लिए अधिक बच्चा पैदा करने की तात्कालिक मूल्य के तौर पर यह व्यवस्था दी गयी थी। लेकिन आज भी जब वैसी स्थितियां नहीं हैं, तब भी उसी नियम को बनाये रखना उचित नहीं है। उसी प्रकार भगवान कृष्ण द्वारा परिस्थिति विशेष में अधिक पत्नी रखने की बात को सामान्य दशा में उचित बताना उपयुक्त नहीं है। सत्य, प्रेम, करुणा, मैत्री आदि के भाव शाश्वत मूल्य हैं, इन्हें किसी देश—काल और परिस्थिति की अपेक्षा नहीं है। तात्कालिक मूल्यों को शाश्वत मूल्य बनाने की भूल घातक होती है। तात्कालिक मूल्यों का अपना महत्व है, लेकिन वह शाश्वत मूल्यों का स्थान नहीं ले सकता।

मूल्य शिक्षा, साधन मूल्य और साध्य मूल्य के रूप में भी होती है। साध्य मूल्य वह है जिसे व्यक्ति या समाज किसी वृहत्तर उद्देश्य के लिए प्राप्त करना चाहता है और साधन मूल्य वह है जिसके माध्यम से साध्य मूल्य की प्राप्ति होती है। जैसे गांधी जी ने सत्य को साध्य मूल्य और अहिंसा को साधन के रूप में स्वीकार किया था। कभी-कभी कोई साध्य मूल्य अपने से उच्च साध्य के लिए साधन के रूप में व्यवहृत होता है। पंचतंत्र में कहा गया है कि "कुल के लिए एक व्यक्ति को या वैयक्तिक हित को छोड़ देना चाहिए और ग्राम के लिए कुल को छोड़ देना चाहिए। जनपद के लिए ग्राम का त्याग करना चाहिए और आत्मा के लिए पृथ्वी का त्याग करना चाहिए।"² लेकिन यहाँ भी जब-जब साधन मूल्य को

साध्य मूल्य मानने की भूल हम करते हैं, वहीं पर मूल्य शिक्षा की गौरवशाली परम्परा कलंकित होती है जैसे धन, मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक है, लेकिन साध्य मूल्य के रूप में। जबकि आज के उपभोक्तावादी आर्थिक युग में धन ही साध्य हो गया है, लेकिन साधन मूल्य के रूप में। जो धन कभी मनुष्य के लिए था, उसी के लिए अब मनुष्य हो गया है। इसी कारण पैसे के लिए मनुष्य द्वारा मनुष्य का कत्ल कर दिया जाता है, दहेज के लिए लोग बहुओं को घास-फूस की भांति जला देते हैं। आज के युग की आम कहावत है— 'न बाप न मझ्या, सबसे बड़ा रुपइया।' पैसे के लिए कोई बिकता है और पैसे से कोई किसी को खरीद लेता है, जबकि दोनों स्थितियाँ स्वस्थ मूल्य शिक्षा की परम्परा को कलंकित करती हैं। धन को साक्ष्य मानने से उपजी आर्थिक गैरबराबरी को कम करने के लिए और धन को मनुष्य के लिए साधन मूल्य के रूप में स्थापित करने के लिए गांधी जी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की वकालत की है। धन को साध्य मानने की परम्परा ने अनैतिकता, भ्रष्टाचार, आर्थिक गैरबराबरी और धनाढ्य लोगों में एय्याशी की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है, जो स्वस्थ लोकतंत्र और मानवता दोनों के लिए घातक हैं। आज पूरी विश्व-राजनीति अपने व्यापारिक और आर्थिक हित के लिए की जा रही है, इसके लिए दूसरे देश को नेस्तनाबूत करने में भी समर्थ राष्ट्र संकोच नहीं करते हैं। विश्व गांव (ग्लोबल विलेज) के इस युग में कबीलाई मानसिकता, पैसे को सब कुछ मानने के कारण निराभौतिकवादी संस्कृति की देन है। इससे निजात पाने के लिए मूल्यपरक शिक्षा को बढ़ावा देना होगा और मनुष्य को केन्द्र में रखकर धन को साध्य के बजाय साधन के रूप में स्वीकारना होगा।

धर्म, मानव समाज के लिए कितना आवश्यक है, यह महर्षि कणाद द्वारा दी गयी धर्म की परिभाषा से परिलक्षित होता है—'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः।'³ अर्थात् जिससे भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति की सिद्धि होती है वह धर्म है। प्राचीन भारतीय जीवन के प्राप्त करने वाले चार पदार्थों (पुरुषार्थों) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म प्रथम है। धर्म से ही मानव अपने जीवन का आरम्भ करता है। धर्म धारण करने या दूसरों की भलाई करने को कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है— परहित धर्म सरिस नहि भाई। परपीड़ा सम नहि अधमाई।⁴ इसी परहित की भावना के तहत स्वामी विवेकानन्द ने दीन दुखियों की सेवा को ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा बताते हुए लिखा है— "मैं उस धर्म या ईश्वर में विश्वास नहीं करता, जो न अनाथ बच्चों के मुँह में रोटी का एक टुकड़ा डालता हो और न विधवाओं के आँसू पोंछता हो"⁵ जैन धर्म का अहिंसा परमो धर्म, बौद्ध धर्म का प्रेम, करुणा और मैत्री का भाव, ईसाई धर्म का पड़ोसियों से प्यार करो और इस्लाम धर्म का ईमान और जकात का भाव सबके सब परोपकार से ओत्प्रेत है। प्रत्येक मनुष्य में ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वह क्रमशः विकास करता हुआ सच्चिदानन्द बन जाय, जो सत्कर्म मनुष्य के सच्चिदानन्द बनने में सहायक होते हैं, उन्हें आचार कहा जाता है। मानव के स्वतः अपने तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति जो कर्तव्य होते हैं, उन्हें आचार की संज्ञा दी गयी है। आचार का ही विशेष अंग धर्म है।⁶

वस्तुतः, धर्म के नाम पर जितना रक्तपात हुआ है उतना और किसी के नाम पर नहीं हुआ है। वैदिक धर्म और जैन-बौद्ध धर्म के बीच, शैव, शाक्त और वैष्णवों के बीच, यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म के बीच, इस्लाम और हिन्दू धर्म के बीच बहुत अधिक हिंसा और रक्तपात हुआ है। आज भी इस्लाम धर्म के बीच बहुत अधिक हिंसा और रक्तपात हुआ है। आज भी इस्लाम धर्म में जेहाद के नाम पर बच्चों, औरतों और सीधे-साधे लोगों की नृशंस हत्या की जाती है और दूसरी ओर हिन्दुत्व, ईसाई और इस्लाम धर्म से रक्षा के नाम पर उग्र होता हिन्दुओं का समूह। अब हमारे सामने प्रश्न उठता है कि जब सभी धर्म परहित का उपदेश देते हैं तो उनमें मानवता का गला घोटने वाली प्रवृत्ति की साम्प्रदायिकता और उग्रता कहाँ से आई। इस प्रश्न पर जब हम विचार करते हैं, तो पाते हैं कि कुछ स्वार्थी और संकीर्ण धार्मिक मतानुयायियों द्वारा अपने तुच्छ स्वार्थों और कट्टर धार्मिक मानसिकता को बलात् हिंसा के द्वारा दूसरों पर थोपना चाहते हैं। वे धर्म की दया, करुणा, मैत्री आदि उदार भावनाओं को भूल गये। ये साम्प्रदायिक लोग जुनूनी होने के कारण संगठित होते गये और आज सभ्य समाज के लिए एक समस्या बन गये हैं। धर्मों को साम्प्रदायिकता और उग्रवाद से बचाने के लिए हर धर्म के उदारवादियों को सचेत और संगठित होकर धार्मिक मूल्य की मूल भावना का पक्षधर होना पड़ेगा, साथ ही साथ धर्म के आचार और विचार दोनों पक्षों को अपनाने की आवश्यकता है। आचार व्यक्ति के धार्मिक और विचार व्यक्ति को आध्यात्मिक बनाता है। धर्म अपने पूर्ण अर्थों में तभी चरितार्थ होता है, जब हम बाह्य रूप से धार्मिक बनने के साथ-साथ भीतर से आध्यात्मिक भी बने। प्रायः होता यह है कि हम ऊपर से धार्मिक तो बन जाते हैं, लेकिन अन्दर से आध्यात्मिक नहीं बन पाते हैं और तभी हम धार्मिक होते हुए भी अनेकानेक संकीर्णताओं और कमजोरियों के शिकार हो जाते हैं। बहुत से साधु संन्यासी छोटी-छोटी बातों पर ऐसा गुस्सा होते हैं जिस पर सामान्य व्यक्ति तनिक भी उद्वेलित नहीं होता है। बाहर धार्मिक और अन्दर से भी आध्यात्मिक होने के कारण सुकरात, ईसामसीह और गांधी अपने हत्यारों को भी माफ करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर गये। उनको अपने हत्यारों पर क्रोध आया ही नहीं, अपितु उन पर दया आई। इसी कारण केवल धार्मिक व्यक्ति ही धर्म को धन्धा बनाता है और धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत व्यक्ति धन्धे को धर्म बनाता है। इसलिए पूजा ही कर्म है और दूसरे के लिए कर्म ही पूजा है। अतः धार्मिक व्यक्ति आध्यात्मिक भी बने।

भारत में भ्रष्टाचार की विकरालता को ध्यान में रखते हुए उन कारणों का विश्लेषण करना आवश्यक है, जो इस 'विष बेल' को खाद-पानी देने का काम कर रहे हैं। अब यह समस्या राजनीतिक या प्रशासनिक गलियारों तक ही सीमित नहीं रह गई है, बल्कि सामाजिक जीवन से जुड़ गई है। यह समस्या भारतीय समाज पर आच्छादित हो चुकी है और इसके कुप्रभाव भी परिलक्षित हो रहे हैं। समाज की प्राथमिक इकाई परिवार होता है। प्रथम गुरु माता होती है, जो बालक को संस्कारों की पूंजी देती है, उसे नैतिकता का पाठ पढ़ाती है। जीवन की वर्जनाओं का ज्ञान सर्वप्रथम वही देती है। यदि हम नजदीक से देखें तो पता चलता है कि

संस्कारों के स्तर पर हम नीचे आए हैं और बच्चों को जीवन मूल्यों से जुड़े अच्छे संस्कार दे पाने में अपनी भूमिका को व्यापक नहीं बना पा रहे हैं। किसी हद तक हम बच्चे को उचित-अनुचित का फर्क बता पाने में विफल साबित हो रहे हैं। संभवतः यह कालखंड का प्रभाव है। घर के बाद बच्चे का पाठशाला से परिचय होता है, जहां वह प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करता है। यहां पर प्रसंगवश प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख करना आवश्यक है। जब बच्चे गुरुकुलों में पढ़ते थे, जहां शिक्षा के साथ-साथ उन्हें उन्नत जीवन मूल्यों और नैतिकता का भी पाठ पढ़ाया जाता था। गुरुकुलों में दीक्षित बालक शिक्षा के बाद समाज और राष्ट्र निर्माण में प्रभावी योगदान देता था। आज की प्रारंभिक और उच्च शिक्षा का स्वरूप वैसा नहीं रहा। जहां अभिभावक यह चाहते हैं कि पूत, अनैतिक रास्तों पर चले और 'कमाऊ' साबित हो, वहीं बच्चों को पढ़ाने वाले गुरुओं का भी अपना कोई चरित्र नहीं रहा, इसका प्रभाव साफ दिख रहा है। आचरण में भ्रष्टाचार का समावेश बालपन से हो रहा है। ऐसे में वर्जनाएं तो टूटेंगी ही। कभी भ्रष्टाचार उन्मूलन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए देश के पूर्व राष्ट्रपति डॉ० अब्दुल कलाम ने कहा था— "नैतिक मूल्यों की जीवन में स्थापना होनी चाहिए। यह कार्य माता-पिता और प्रारंभिक शिक्षा देने वाले शिक्षक कर सकते हैं।" दुख का विषय है कि ऐसा होता नहीं दिख रहा है या अति न्यून स्तर पर ही ऐसा हो रहा है। चरित्र में गहरी पैठ बना चुकी अनैतिकता, भ्रष्टाचार को हवा दे रही है यानी हमारा ढांचा ही चरमरा गया है। यह व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर का वह प्रमुख कारण है, जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है।⁷

शिक्षा को नैतिकता से जोड़ना होगा। शिक्षा के जरिये नैतिक मूल्यों की स्थापना पर जोर देना होगा। हमें बुनियादी शिक्षा के ढांचे में बदलाव लाना होगा। इस संदर्भ में राष्ट्रपिता बापू की उस विधारधारा को अपनाना होगा, जो आज भी प्रासंगिक है। बापू ने शिक्षा में नागरिक गुणों की जमकर पैरोकारी की थी। वह वर्तमान शिक्षा पद्धति को पसंद नहीं करते थे। बापू का मानना था कि शिक्षा जीवन से संबंधित होनी चाहिए तथा इसके जरिये नागरिक गुणों का विकास किया जाना चाहिए।⁸ शिक्षा वस्तुतः जीने की कला है और इसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न मूल्यों को समझने और उनमें फर्क करने तथा उनका मूल्यांकन करने में समर्थ होगा। न्यायोचित एवं भ्रष्टाचार मुक्त व्यवस्था तभी संभव है, जब शैक्षणिक स्तर पर प्रयास हों और उसमें जीवन मूल्यों का समावेश हो। एक अच्छा नागरिक ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध बिगुल फूंक सकता है।

वस्तुतः, हम सामाजिक मूल्यों के क्षरण को रोकें सिर्फ कानून बनाकर भ्रष्टाचार की रोकथाम नहीं की जा सकती। हमें समाज निर्माण पर ध्यान देना होगा और इस काम को अंजाम देने के लिए, चिंतकों, मनीषियों, विचारकों, साहित्यकारों, धर्माचार्यों व प्रबुद्ध लोगों को आगे आकर न सिर्फ समाज को भ्रष्टाचार या अनैतिकता के संक्रमण से बचाना होगा बल्कि उसे दिशा-बोध कराना होगा। वैश्वीकरण,

उदारीकरण, बाजारवाद, पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण तथा भोगवादी प्रवृत्तियों के कारण जो भटकाव की स्थिति बनी है, उसे उबारने की मुहिम छेड़नी होगी।

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व में प्रत्येक स्तर पर तथ्यपरक विकास तभी सम्यक् रूप से मानव कल्याणकारी हो सकता है, जबकि वह मूल्यात्मक दिशा निर्देशन में किया जायेगा।⁹ इन्ही मूल्यात्मक दृष्टि के अभाव में आज बाजारवाद में व्यक्ति एक वस्तु बन गया है और उपभोक्तावादी संस्कृति ने पृथ्वी के अनेकानेक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके पृथ्वी पर मानव होने की तमाम शर्तों को मिटाने पर तुल गया है। इस संक्रमण काल से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है, मूल्य शिक्षा को बढ़ावा देने का और व्यक्ति से वस्तु बने मानव को प्रत्येक विचार और व्यवहार के केन्द्र में लाने का लक्ष्य हो।¹⁰

अन्ततः, स्वभाविक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि समस्या कोई भी हो, उसका समाधान निकाला जा सकता है, बशर्ते प्रयासों में दृढ़ता और पारदर्शिता हो। यह बात भ्रष्टाचार या अनैतिक मूल्यों पर भी लागू होती है। चूंकि यह समस्या समाज से बहुत गहराई से जुड़ गई है, अतएव सर्वप्रथम हमें इसके समाधान की शुरुआत भी परिवार और समाज के स्तर से करनी होगी। हमें पारिवारिक स्तर पर बच्चों में उच्च जीवन मूल्यों को विकसित करना होगा तथा उन्हें ऐसे संस्कारों से भरना होगा, जो उन्हें उन्नत चरित्रबल दें। वे उचित-अनुचित का फर्क समझें और जीवन में सत्य और निष्ठा को स्थान दें।

संदर्भ :

1. अर्बन, फण्डामेंटल ऑफ एथिक्स, पृ० 35
2. त्यजदेकं कुलस्यार्थं ग्रामस्यार्थं कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थं आत्मार्थं पृथ्वीं त्यजेत् ॥ —पंचतंत्र
3. कणाद महर्षि, वैशेषिक दर्शन, 1/2
4. तुलसीदास गोस्वामी, उत्तरकाण्ड, रामचरितमानस ।
5. विवेकानन्द स्वामी, व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, रामकृष्णमठ, धन्तोली, नागपुर पृ० 9 ।
6. राधाकृष्णन, रिलिजन एवं सोसाइटी, पृ० 105 ।
7. देवराज नन्द किशोर, भारतीय संस्कृति, पृ० 117 ।
8. पाण्डेय संगम लाल, गाँधी का दर्शन, गर्ग बर्डस प्रयाग 1957, पृ० 97 ।
9. विवेकानन्द स्वामी, हिन्दू धर्म पृ० 96
10. लोहिया राममनोहर, समाजवाद की राजनीति, पृ० 95 ।

